बंकिम है
शंकित है
अंतिम भंगिम ।
भाल पर
उन इंगनों को
कैसा ?कब?
कर पाता अंकित

हे ! आदिम अन्तिम माता !
प्रमाता की माँ !
अतुल दर्शक
दर्शक हर्षक
तरल सजीव
करुणा छलकती
नयनों में
अपलक

एक झलक
बिलखते बिलखते
नयनों को
लखने दे
परम करुणा रस को
भाव से
और चाव से
चरचर,चरचर
चखने दे

ओ चेतना !
ध्रुव केतना !
मम.. ता मम.. ता
ओ ममता की मुर्ति
मत छोड़ना मम ममता ।

□□□

भूचुम्बी द्वार

प्रभु के
विभु त्रिभुवन के
निकट जाना चाहते हो तुम !
उस मंदिर में जाने,
टिकट पाना चाहते हो तुम
वहाँ जाना बहुत विकट है
मानापमान का
अवसान ! अनिवार्य है, सर्वप्रथम!
वहाँ विराजमान हैं भगवान !
जिस मंदिर का
चूल! शिखर !
गगन चूम रहा है
और प्रवेश द्वार
धरती सूँघ रहा है
वहाँ जाना बहुत विकट है ।

□□□

निर्णय लिया निशा में

विपरीत रीत
बनी दशा में
अमा की
घनी निशा में
स्वयं को देखा था

कि मैं अकेला
प्रकाश पूँज हूँ
ललाम हूँ
शेष सब
शाम शाम

किन्तु ज्ञात हुआ
आज ! पौर्णिमा
केवल आप हो
उद्योत इन्दु !
और यह टिम टिमाता
खुद खद्योत है ।

□□□

चितकबरा

प्रकृति के प्यार ने
रंगीन राग ने
अरूपी पुरुष को
चिदम्बर को

न केवल
पापी पाखण्डी
और रूपी बनाया है
परन्तु

पुरुष की परख करना भी
कठिन हो गया है आज !
बहुरूपी बनाया है
चितकबरा
बेशक !

□□□

पल पल पलटन

हे ! अमरता
हे! अमलता
समलता का जीवन जीता
असह्य सहता
विरह वेदना
युगल कर तल
मलता मलता
मरता मरता
बचा है क्षीणतम श्वास
इस घट में
ऐसा भाग्य किसने रचा है ?

जिसके सम्मुख मौन
वेद, पुराण, ऋचा हैं
तू कहाँ गई थी
अपना कलेजा
साथ ले जाती
अपना दिल धडकन !
तो यह सब
क्यों यों
घटित होती
अनहोनी सी
ओ! परम सत्ता !
स्वाभिमान से घुली
गंभीर ध्वनि
ध्वनित हुई

सम्बोधन के रूप में
अरूप शून्य में से
कि
अरे ! लाला
वाणी में जरा सा
संयम ला.. ला।

बना बावला
कहीं का
मैं भ्रमणशीला नहीं हूँ
विभ्रमशीला नहीं हूँ
सदा सर्वथा
सहज सजीली
मेरी लीला
काला पीलापन,
लाला नीलापन
महासत्ता में
सम्भव नहीं है
विलोम परिणमन
पर का अनुगमन

प्रभावित हो पर से
पर के प्रति नमन
परिणमन!
असम्भव!
त्रैकालिक
अपनी सीमा
इयत्ता का
उल्लंघन !
हाँ!
व्यक्तित्व की सत्ता में
यह सब कुछ
होना सम्भव है

तभी भटक रहा है
तू भव भव
पराभूत हो
किये बिना
अपना अनुभव

नाना विकारों में
नाना प्रकारों में
बार बार हो उद्‌भव
उचित ही है
कि
कोमल कोमल

कोंपल
पल पल
पवनाहत हो
क्यों ना दोलाायित हो
अपना परिचय देते
मौन खोल देते

गांभीर्य त्याग
भोले बालक - सम
बोल - बोल लेते
फूले वे
डाल - डाल के
गोल - गोल हैं

गाल - गाल भी
चंचलता में
झूले वे
अपनी अपनी
सीमा परिधि
सहज चाल को

भूले वे
पर ! पर क्या?
तरु का स्कन्ध !
निस्पन्द ! स्तब्ध ! होता है
कब हुआ ? वह स्पन्दित !

पुरुषार्थ के बल
केवल बल का
विस्फोटक हो जा
हे !भव्य !

भावी भवातीत
शिव शंकर !
हे! शंभव!
अब तो कर ले
आत्मीयता का
अव्यय भव वैभव का

अनुपम अनुभव !
हृदय में उठती हुई
तरंगमाला
समर्पित करती हुई
लघु सत्ता

ओ महाशक्ति !
अपनी शक्ति से
या युक्ति से
इसे प्रभावित कर दो
शासित कर दो
अपने शासन से

ऐसा सम्मोहित कर दो
कि यह
अर्पित हो सके
सेवक बन कर
पाद प्रान्त में

सरोष स्वरों में
महासत्ता का उत्तर !
सर्वसहा हूँ
सर्व स्वहा नहीं हूँ
लेना नहीं
देना ही जानती हूँ

जीवन मानती हूँ
महा सत्ता माँ
दूसरों पर सत्ता चलाना
हे वत्स !
हिंसक कार्य मानती है

आरूढ़ हो
सिंहासन पर
शासक बन
शासन चलाना
परतन्त्रता का पोषण है

स्वतन्त्रता का शोषण है
यही माँ का सदा सदा बस
उद्घोषण है
सत्पथ दर्शक
दिव्यालोक
रोषन है ! रोषन है !!

□□□

बिजली की कौंध

आलोक का अवलोकन
आँखें करतीं
अकुलातीं, विकलित होतीं
एक पर टिकती नहीं
उस की ऊर्जा बिकती है
पल - पल परिवर्तित हो
पर पर जा टिकती है

यही कारण है
हे ! आलोक पुंज !
आलोक तुम से
नहीं चाहता यह
विशुद्धतम तम - तम में
आँखें पूरी खुलती हैं
एक पर टिकतीं अनायास !
अपलक निश्चल होती है
अवलोकन पूरा होता है
मनन मन्थन अबाधित चलता है
अनुभूति में मति ढलती है
इसलिए
आलोक बाधक है

अलिगुण कालिख अन्धकार !
साधक है इस साधक को
अपना आलोक
इन आँखों पर मत छोड़ो !
ओ ! आलोक - धाम !
बिजली कौंधती है तब !
आँखें मुँदती हैं !

□□□

प्यास, पराग की

ऊर्ध्वमुखी हो
ऊर्ध्व उठा है इतना
कि जिसे
अशन वसन की
ललन मिलन की
परस हसन की
और

प्रभु पद दर्शन की तक
इच्छा नहीं शेष !
गुण सुरभि से सुरभित
फुल्लित फूल परागी
कहाँ है वह वीतरागी

कहीं हो
उसे हो नमन
पराग प्यासा
अलि बन रागी !

□□□

कदम फूल, कलम शूल

इस युग में भी
सत युग सा
सुधार तो हुआ है
पर लगता है
उधार हुआ है !

अन्यथा
कभी का हुआ होता
उद्धार।
प्रभु के कदमों पर
चलने वाले कदम कम नहीं है।
उन कदमों में
मखमल मुलायम
अच्छी अहिंसा पलती है

साथ ही साथ
उन कलमों में
हिंसा की दुगनी ज्वाला जलती है
इस युग में भी
सत युग सा
सुधार तो हुआ है
पर लगता है
उधार हुआ है !

□□□

मन्मथ मथनी

मणिमय मौलिक
दिव्यालौकिक
मनहर हार
जब से तुम से
प्राप्त हुआ है
उसे बस !
अपहरण करना चाहती है
मुझे वरण करना चाहती है
अनन्त भविष्य में
मेरे चरण - शरणा
गहना चाहती है

स्वयं अकेली
जीवित रहने को
स्वीकृति है
इच्छा है
पर ! धृति नहीं है
अक्षमा!

विलम्ब हुआ
सेव्य की गवेषणा में
कारुणिक आँखों से
मन ही मन

मानों! मौन कहती
माँग रही है
पुनः पुनः क्षमा
मृदु - मुक्ति - रमा !

परन्तु यह सब
इसे कब स्वीकार है ?
यह स्वयं ही
श्रीकार है
इस गूढ़ गोपनता को
इसने सूँघा है
इस की नासिका
सोई नहीं अब !
उत्थानिका है
और
एक और कारण है

दासी दास बनना
इतनी परतन्त्रता नहीं
जितनी कि
ईश स्वामी बनना
परतन्त्रता की अन्तिम सीमा है
इसीलिए
अक्षतवीर्य हूँ और रहूँ

अविवाहित !
अबाधित बनने
विवाह करना
रमणी रमण में रमना
मातृ सेवा से वंचित रहना है ना !

यह एक महती
असह्य वेदना है
मेरे लिए ।

हे चितिजननी !
अंग अंग को
अनंग अंगार
अंगारित कर न ले
अंगातीत अनुभव क्षण में
संगातीत भावित मन में
अंकुरित विकार कर न ले
और
महदाकार धर न ले

इससे पूर्व
सरस शान्त सुधा
कृपावती ! कर कर कृपा
इसे पिला दे।
हे ! यतिगणनी !
फलस्वरूप
रति, रति पति के प्रति
मति में रतिभाव
हो न सके प्रादुर्भाव !
बस !
इस मति की रति
विषय विरति में
सतत निरत रहे

हे रतिहननी!
जिन में परम शान्त रस
पर्याप्त मात्रा में
छलक रहा हो

जिन में चिति गोपन - **पन**
ऊपर आने को
मचल रहा हो

ऐसे श्रुति मधुर
अश्रुत - पूर्व
आतम गीत संगीत
सुना - सुना कर
संकट कंटक विहीन
अपने अंक में
इसे बुला ले !
सुचिर काल तक
इसे सुला ले !
हे ! मन्मथ मथनी !
मार्दव माता
मतिशमनी !
फलतः निश्चित

समग्र ऊर्जा
ऊर्ध्वमुखी हो
आतम पथ पर
यात्रित हो ।
मूर्त का बहिष्कार
अन्तर्मुहूर्त में ।
त्रुटित गात्रित हो ।
परिधि से हट कर
सिमिट - सिमिट कर
अमिट केन्द्र में,
एकत्रित हो ।
आगामी अनन्तकाल तक
एकतंत्रित हो ।
हे! चितिजननी !

□□□

सागर तट

अज्ञात पुरुष
सागर - तट पर
निर्निमेष !
निहार रहा है
वस्तु - स्वरूप
रूप लावण्य
ज्ञात करना चाह रहा है

और वह स्वयं
उधर से ।
ठहर ठहर कर
गहर गहर कर
अपार सागर
रहस्यमय गाथा
गाता गाता !
जा रहा है जा रहा है

लहर लहर चुन
तट तक लाकर
लौट रहा है, लौट रहा है
लहरों को मुड़कर कहाँ निहारता है ?
कब निहारा?
लहर लहर है
नहीं नहर है

नहरों में लहर है
लहरों में नहर नहीं
लहर जहर हैं
कहाँ खबर है ?
किसे खबर है ?

उसी जहर से
अपना गागर
भरता जाता, भरता जाता
यह संसार !
प्रहर - प्रहर पर
मरता जाता, मरता जाता/यह संसार !
दुख से पीड़ित
आह ! भरता
मैं हूँ शाश्वत सत्ता
अविनश्वर जल का आकर ।
पर
प्रायः अज्ञात ।
मेरा ज्ञात होना ही
मोक्ष है, अक्षय
मोह का क्षय है

अब तो ज्ञात कर ले
कम से कम
अपने पर,
महर महर कर ले
हे अज्ञात पुरुष !
अपने पर
महर महर कर ले ।

□□□

महका मकरन्द

हरा भरा था
पल्लव पत्तों
से उभरा था
प्रौढ़ पौधा
लाल गुलाब का
कल तक !
डाल - डाल के
चूल - चूल पर
फूल दल फूला
महका मकरन्द
पूरा भरा था
कल तक
आज उदासी है उसमें !
अकुलाया है

लगता है
घबराहट से उसका कण्ठ
भर आया है
कौन सुनता है उस रुदन
अरण्य रोदन जो रहा
जिस पर मँडराता
मकरन्द प्यासा
भ्रमर दल ने
इस भीतरी गन्ध को भी
सूँघा है
अपनी नासा से
अपनी आजीविका
लुटती देख !

बुला रहा है माली को
और कह रहा है
क्या सोचता है ?
अपराधी और नहीं
हे! उपचारक !
ऊपर ऊपर केवल
उपचार करता जा रहा है
अन्धाधुंध !
क्या यह उपचार हैं ?
मात्र उपचार !

भीतर झाँकना भी अनिवार्य है
तू भूल रहा है
इस के मूल में
एक कीड़ा
क्रीड़ा कर रहा है
सानन्द
मकरन्द चूस रहा है
क्या? अभी ज्ञात नहीं
हे! बावला बागवान !
कैसे बनेगा तू ?
भाग्यवान ! भगवान !

□□□

राकेन्दु

इसी की गवेषणा
करनी थी इसे
कि
किस कारण से
समग्र सत्ता सिन्धु
उमड़ रहा है यह
तट का उल्लंघन तक
कर गया है अब!
नाच नाचते
उछल उछल कर
उज्ज्वल उज्ज्वल
ये बिन्दु ! बिन्दु !
हे ! राकेन्दु !

तभी तो
चन्दन - गन्ध लिये
कर कमल बन्द हुए
मन्दी बन्दी
नयन कुमुदिनी
मुदित हुई
मन्द मन्द मुस्कान लिये
मधुरिम मार्दव
अधरों पर
और
यह चतुर - चातुर
चेतन चातक
चकित हुआ
भाव चाव से

शीतल चाँदनी का
चिदानन्दिनी का
पान कर रहा है
इतना ही नहीं
और भी गोपनता

बाहर आ प्रकाश को छू रही है
मुक्ता फल सम
शान्त शीतल
शुभ्र शुभ्रतम
सलिल सीकर
लीला सहित

बरस रहे हैं
इस के इस
मानस की इन्दुमणि से
इसीलिए
सुधा सिन्धु हो तुम !
सौम्य इन्दु हो तुम !

□□□

पारदर्शक

हे! योगिन्
दिन प्रतिदिन
यह आभास
अहसास हो रहा है इसे
कि
आपका परिणमन
स्वरूप विश्रान्त नहीं है
अपना प्रान्त
नितान्त ज्ञात हुआ है
आप्त हुआ है 'वह'
पर !
कहाँ प्राप्त हुआ है ?
वह रूपातीत
रसातीत उज्ज्वल जल से
कहाँ? शान्त हुआ है ?

स्नपित स्नात कहाँ हुआ
अनन्त काल से
विमुख जो था
उस ओर मुख हुआ है
केवल
केवल सुख की ओर
यात्री यात्रित हुआ है
यात्रा अभी अधूरी है
पूरी कब हो !
इसीलिए
आप का हृदय स्पन्दन !

मानो मौन कह रहा निरन्तर !
जो अन्दर चल रही है
उसी की उपासना
परमोत्तम साधना
रूपातीत को स्वप्रतीत को
अर्पित समर्पित है
अनन्तशः वन्दन !
यद्यपि नीराग हो
निरामय हो
पर !
आराधक हो
आकार से आकृत हो
आवरण से आवृत हो

कहाँ तुम प्राकृत हो ?
कारण विदित है
जड़मय इन
साकार आँखों में
त्वरित अवतरित हो
निराकार से
निरा निराकृत हो !
फिर !फिर क्या ?
आकार के अवलोकन से
ये आस्थावान विचार
कब हो सकते साकार !
आराधक की आराधना से
यह आकुल आराधक
आराध्य कब हो सकता ?

पार - प्रदर्शक होकर भी
पार - प्रदर्शक नहीं है आप !
दर्शक आपका दर्शन करता है
पर !
स्वभाव भाव दर्शित कब होता ?
दर्शक को
समुचित है यह
दुग्ध धवलतम है
किन्तु
दुग्ध की समग्र सृष्टि
अपने उदरगत पदार्थ - दल को
स्व पर समष्टि को
दर्शित - प्रदर्शित
कहाँ ? कराती है ?

दर्शक की दृष्टि को
अपनी भीतरी गहराई में
प्रविष्ट होने नहीं देती
उसमें
झुक कर झाँकने से
दर्शक को
अपना बिम्ब वह
अवतरित कहाँ दीखता ?
काश ! कुछ
झिल मिल झिल मिल
झलक जाये !
केवल आकर
किनारा छाया !

समग्र स्वरूप साक्षात्कार कहाँ ?
केवल बस ! उस दास की दृष्टि
द्वार पर उदासीना
प्रवेश की प्रतीक्षा में
क्षीणतम श्वास में
आशा सँजोयी
रह जाती खड़ी
स्वयं भूल कर
बाहरी अचेतन स्थूल पर
अनिमेष दृष्टि गड़ी
इसीलिए
दुग्ध में मुग्ध लुब्ध नहीं होना !
वह स्वयं स्वभाव नहीं
स्वभाव प्रदर्शक साधन नहीं

किन्तु!
आर पार प्रदर्शक
अपने में अवगाहित होने
अवगाहक को
आह्वान करता है
अवगाह प्रदायक
अबाधित अबाधक !
वह शुद्ध, सिद्ध घृत है
उसमें झाँको
अपनी आँखों
यथावत् आँको
व्यष्टि समष्टि
समग्र सृष्टि
साक्षात्कार अक्षत धार ।
शाश्वत सार !

□□□

मन की भूख मान

जैसे जैसे
सहज रूप से
विनीत ज्ञान का
विकास होता है
वैसे वैसे
मूल रूप से
मानापमान का
विनाश होता है
स्वाभिमान के
उल्लास विलास में
मृदुल मार्दव
मँजुल हास में
विनय गुण का
अनुनय करता
अवनत विनयी
ज्ञान दास होता है

परम सत्ता का
परम उदास होता है
समर्पित होता है
सब इतिहास !
इति.. हास होता है
भीगा भाव
प्रतिभास होता है
समुचित है वह
पल्लव, पत्रों, फूल फलों के
विपुल दलों से, लदा हुआ है
धरापाद में, धरा माथ वह
महक सूँघता
अवनत पादप
आतप हारक
आप !

□□□

केली अकेली

जीवन में एक
निरी भीतरी
घटना घटी है
जब से
मृदु मँजुल
पूर्व अपरिचित
रामता से मम ममता
मित्रता पटी है
अनन्त ज्वलन्त
अपूर्व क्षमता
इसमें प्रकटी है
जब से प्रमाद - पमदा की
ममता तामसता
बहु भागों में बटी है

उसे लग रही
अटपटी है
प्रेम - प्यास !
घटती घटती
पूरी घटी है
और वह स्वयं
असह्य हो पलटी है
कुछ कुछ अधछुपी सी
अधखुली रिपुता रखती है
टेढ़ी सी
दृष्टि धरी है
रोषभरी कुछ कहती सी
लगती है
अपलक लखती है मुझे !

क्या दोष है मुझ में ?
क्या हुई गलती है?
अब तक मुझ पर
रुचिकर दृष्टि रही
आज ! अरुचिकर
दृष्टि ऐसी !
बनी कैसी यह ?
आप प्रेमी
यह प्रेयसी
अनय श्रेयसी
रूपराशि हो
कब तक रहेगी अब
यह दासी सी
उदासिनी हो प्यासी
अब तक इसे
प्रेम मिला
क्षेम मिला

किन्तु इसके साथ !
यह अप्रत्याशित
विश्वासघात!
क्यों हो रहा है
हे! नाथ
जीवन शिखर पर
वज्रपात है यह !
विखर जायगा सब !
आपत्ति से घिर आया जीवन
आपाद माथ गात
शून्य पड़ गया है
हिमपात हुआ हो कहीं !
जम गया है

दीनता घुली आलोचना
प्रमाद की, ताने बाने
सुनकर
सुषमा समता ने
राजा की पट्टरानी सी
पुरुष को मौन देख कर
सौत - सी
थोड़ी सी चिढ़ी
थोड़ी सी मुड़ी उस ओर !
मौन तोड़ा है
पुरुष स्वयं विश्रान्त हैं
शान्त हैं
बोलेंगे नहीं
मौन तोड़ेंगे नहीं

और चिरकाल तक
मैं अकेली
सुरभित चम्पा
चमेली बनकर
पुरुष के साथ
करूँगी सानन्द केली !
पिला पिला कर
अमृत धार
मिला मिला कर
सस्मित प्यार !

□□□

विकल्प पंछी

चिर से छाई
तामसता की
घनी निशा वह
महा भयावह
पीठ दिखाती
भाग रही है ।
जाग रही है
शनैः शनैः सो
स्वर्णाभा - सी
सौम्य सुन्दरा
काम्य मधुरिमा
साम्य अरुणिमा
ध्रुव की ओर
बढ़ी जा रही
बढ़ी जा रही

शनैः शनैः बस !
शैल समुन्नत
चढ़ी जा रही
चढ़ी जा रही ।
तेज ध्यान में
तेज ज्ञान में
चरम वेग से
ढली जा रही
ढली जा रही।
स्वैर विहारी
विकल्प पंछी
निजी निजी उन
नीड़ों में आ
नयन मूँद कर

शान्त हुए हैं
विश्रान्त हुए ।
दूर दूर तक
फैली छाया
सिमिट सिमिट कर
चरणों में आ
चरण वन्दना
करी जा रही
करी जा रही...।
मौन भाव को
पूर्ण गौण कर
मुक्त कण्ठ से
मुक्त शैव स्तुति
पढ़ी जा रही है ।
पढ़ी जा रही है ।

सौम्य सुगन्धित
फुल्लित पुष्पित
भीगे भावों
श्रद्धांजलियाँ
चढ़ी जा रहीं
चढ़ी जा रहीं... ।
अश्रुतपूर्वा
आज भाग्य की
धन्य धन्यतम
घड़ी आ रही
घड़ी आ रही... ।
ललित छबीली
परम सजीली
दृष्टि सम्पदा
निज की निज में
गड़ी जा रही
गड़ी जा रही... ।

□□□

करूणाई

विशाल विशालतम
निहाल निहालतम
विश्वावलोकिनी
विस्फारिता
दो आँखें
जिन में झाँकता हूँ
सहज आप
आत्मीयता आँकता हूँ
जहाँ निरन्तर
तरंग क्रम से
असीम परिधि को
प्रमुदित करती है
तरलित करती है
करुणाई

पर !
लाल गुलाब की
हलकी - सी वह ।
क्यों तैर रही है
अरुणाई ?
बताओ इसमें क्या है ?
गहनतम गहराई ।
हे शाश्वत सत्ता !
क्या यही कारण है ?
जो विलम्ब हुआ
आत्मीयता उपेक्षित कर
निरालम्ब हुआ
भटकता रहा
सुचिर काल तक
लौटा नहीं
रोता हुआ भी

इसी बीच
मौन का भंग होता है
और !
गौण का रंग होता है
'नहीं नहीं, यथार्थ कारण और है '
जो निकटतम है ,
ज्ञात होना
विकटतम है
कि
सत्ता के रोम रोम पर
पड़ा हुआ
प्रभाव दबाव
परसत्ता का
राजसत्ता राजसता की
वह परिणति
अरुणाई

अपने चरम की ओर
फैलती तरुणाई
उसी की यह
परछाई है
प्रतीत हो रही है
तेरी आँखों से
मेरी आँखों में
अपना दोष, भला हो
पर पर रोष उछालो।
जब नहीं होता
संयम तोष
घट में होश
'यह श्रुति'
श्रुति सुनती है

तत्काल
आँखें खुलीं
राजस रज
धुली
भ्रम टूट गया
श्रम छूट गया
और

गुरु सत्ता में
लघु सत्ता जा
पूर्ण मिली
पूर्ण घुली
मधुरिम संवेदन से
आमूल सिंचित हुआ
एक ताजगी
एकता जगी ।

□□□

प्रति छवियाँ

भू - मण्डल में
नभ - मण्डल में
अमित पदार्थ हैं
अमिट यथार्थ हैं
और उनमें
समित कृतार्थ हैं
अमेय भी हैं
प्रमेय चित है
ज्ञेय ध्येय हैं
तथा हेय हैं
जड़ता गुण से
विरचित हैं
मोहीजन से
परिचित हैं

इन सब को तुम ।
नहीं जानते
हे! जिनवर !
परन्तु ये सब
तव शुचि चित में
प्रेषित करते
अपनी अपनी
पलायुवाली
प्रति - छवियाँ
अवतरित हो
ज्ञानाकार धरती
उपास्य की उपासना
मानो ! उपासिका
करती रहती
बनकर छविमय आरतियाँ

यही आपकी विशेषता हैं
बहिर्दृष्टि निश्शेषता है
इसीलिए प्रभु
कृतार्थ हैं
बने हुए परमार्थ हैं
तुम में हम में
यही अन्तर है
तुम्हारी दृष्टि सा
अन्तर्दृष्टि है
व्यन्तर्दृष्टि नहीं
यही निश्चय नियति है ,
यही अन्तिम नि... यति है ।
यही अन्तर्दृष्टि
निरन्तर उपास्य हो
इस अन्तर में

क्योंकि
विश्वविज्ञता स्वभाव नहीं
विभाव भी नहीं
अभाव भी नहीं
वह निरा
ज्ञेय ज्ञायक भाव है
औपचारिक
संवेदन शून्य... ।
यथार्थ में
स्वज्ञता ही
विज्ञता है स्वभाव है
भावित भाव...।

औपाधिक सब भावों से
परे... ऊपर उठा बहुत दूर असंपृक्त !
और वह संवेदन
स्व का ही होता है
चाहे वह स्वभाव हो या विभाव ।
पर का नहीं संवेदन
पर का यदि हो
दुख का अन्त नहीं
सुख अनन्त नहीं
और फिर सन्त कहाँ ?
अरहन्त कहाँ ?
किन्तु ज्ञात रहे
स्वसंवेदन भी
सांप्रतिक तात्कालिक !

त्रैकालिक नहीं
अन्यथा
दुख के साथ सुख का
सुख के साथ दुख का
क्यों ना हो
संवेदन !वेदन !
हे चेतन !
इतना ही नहीं
आत्म - गत अनन्तगुण
पूर्ण ज्ञान से भी
संवेदित नहीं होते
केवल ज्ञात होते
यह ज्ञात रहे
अथवा ज्ञान में
अपना अपना

रूपाकार ले
झलक जाते स्वयं आप
ज्ञेय के रूप में
परिवर्तित प्रतिरूप में
जैसे हो वह
सम्मुख दर्पण
विविध पदार्थ
अपने अपने
रूप रंग, अंग ढंग
करते अर्पण
दर्पण में पर वह
क्या विकार झलकता ?
क्या? तजता दर्पण
आत्मीयता उज्ज्वलता ?

सो मैं हूँ
केवल संवेदन शील
धवलिम चेतन जल से
भरा हुआ लबालब... !
तरंग हीन
शान्त शीतल झील
खेल खेलता
सतत सलील
शेष समग्र बस !
शून्य... शून्य... नील !

□□□

दर्पण में दर्प न

आखिर यह
अपार सिन्धु
क्या है सागर
अगर... ।
बिन्दु बिन्दु
अनन्त बिन्दु
वात्सल्य सौहार्द सहित
हो कर परस्पर
मुदित प्रमुदित
आलिंगित आकुंचित नहीं होते ।
मगर !
मगरमच्छ कच्छप
मारक विषधर अजगर
वहीं चरते हैं
वहीं चलते हैं

हिंसकों के डगर
अनेक महानगर
वहीं बसते हैं
वहीं पलते हैं
महासत्ता नागिन
फूत्कार करती
अपनी फणावली
उन्नत उठाकर
अपनी सत्ता सिंहासन
वहीं जमाती है
किन्तु काल्पनिक
इसीलिए
यह परम सत्य है

सिन्धु अंशी नहीं है
बिन्दु अंश नहीं है उसका
बिन्दु का वंश सिन्धु नहीं है
किन्तु! बिन्दु!
अंश अंशी स्वयं है
स्वयं का स्वयं आधार आधेय।
परनिरपेक्षित जीवन जीता है
केवल सागर.... लोकोपचार
इसी से अकथ्य सत्य वह
सार तथ्य वह....।
और पूर्ण फलित हो रहा है
कि
लय में लय होना
यह सिद्धान्त जो रहा है
अनुचित सिद्ध हो रहा है
और !
प्रकाश प्रकाश में
लीन हो रहा है
यह भी उपचार है
कारण यह है
कि
प्रकाश प्रकाशक की
अभिन्न अनन्य
आत्मीय परिणति है
गुण - धर्म - भाव
धर्म धर्मी से
गुण गुणी से
परत्र प्रवास करने का
प्रयास तक नहीं कर सकते

क्योंकि
धर्मी का धर्म
गुणी का गुण
प्राण है, श्वास है
यह बात निराली है
कि
बिना प्रयास प्रकाश से
प्रकाश्य प्रकाशित होते हैं
यह उनकी योग्यता है
किन्तु
प्रकाश्य या प्रकाशित में
स्व पर प्रकाशक का
अवतरण अवकाश नहीं
यह भी बात ज्ञात रहे
कि जिनमें
उजली उजली उधड़ी
पूरी कलायें है
झिलमिलाये हैं
गुण - धर्म - जाति की अपेक्षा
एक से लसे हैं
पर ! बाहर से
उनमें
अपने अपने
अस्तिपना
निरे निरे हँसे हैं
फिर ! ऐक्य कैसे ?
शिव में शिव
जिन में जिन
चिर से बसे हैं

निज नियति से
सुदृढ़ कसे हैं
भ्रम भ्रम है
ब्रह्म ब्रह्म है
भ्रम में ब्रह्म नहीं
ब्रह्म में भ्रम नहीं।
अहा! यह कैसी ?
विधि विधान - व्यवस्था
प्रति सत्ता की
स्वाधीन स्वतन्त्रता
परस्पर
एक दूसरे के
केवल साक्षी ।
जिनमें कन्दर्प दर्प न
कहाँ करते ?
अर्पण समर्पण
अपना पन
दर्पण में दर्प न ।

□□□

कब भूलूँ सब ?

स्वर्गीय भुक्ति नहीं
पार्थिव शक्ति नहीं
ऐसी एक युक्ति चाहिए
बार बार ही नहीं
एक बार भी अब !
बाहर नहीं आ पाऊँ
निशि दिन रमण करूँ
अपने में
द्वैत की नहीं
अद्वैत की भक्ति चाहिए
आभरण से
आवरण से
चिरकाल तक मुक्ति चाहिए
ओ ! परम सत्ता !
अनन्त शक्ति लिये
निगूढ़ में बैठी
विलम्ब नहीं अब
अविलम्ब !
निरी निरावरण की
व्यक्ति चाहिए
भावी भटकन की
आकाँक्षाओं - कुण्ठाओं
डाकिनी सम्मुख न आये
विगत वनी में रहती
पिशाचिनी का
मन में स्मरण नहीं आये
स्मरण - शक्ति नहीं
विस्मरण की
शक्ति चाहिए ।

□□□

पक्षपात : पक्षाघात

शिशिर वासत से
छिल सकता है
अशनिपात से
जल सकता है
गल सकता भी
हिम पात से है
पल पल पुराना
अधुनातन
पूरण गलन का
ध्रुव निकेतन
अणु अणु मिलकर
बना हुआ यह तन ।
पर ! इन सबसे
कब प्रभावित होता?
मानव मन !

और जिस रोग के योग में
भोगोपभोग में
बाधा आती है
भोक्ता पुरुष को
उसका
एक ओर का हाथ
साथ नहीं देता
कर्महीन होता है
उसी ओर का पाद
पथ पर चल नहीं सकता
शून्य दीन होता है
मुख की आकृति भी
विकृति होती है
एक देश !

वैद्य लोग
उसे कहते हैं
पक्षाघात रोग
किन्तु उसका
मन मस्तिष्क पर
प्रभाव नहीं
दबाव नहीं
इसीलिए
पक्षाघात ही
स्वयं पक्षाघात से
आक्रान्त पीड़ित है
किन्तु यथार्थ में पक्षपात ही
पक्षाघात है

जिसका प्रभाव
तत्काल पड़ता है
गुप्त सुरक्षित
भीतर रहता
जीवन नियन्ता
बलधर मन पर ।
अन्यथा हृदय स्पन्दन की
आरोहण अवरोहण स्थिति
क्यों होती है ?
किसकी करामात है यह ?
यही तो 'पक्षपात' है

सहज मानस
मध्यम तल पर
सचाई की मधुरिम
भावभंगिम तरंग
उठती हैं
क्रम क्रम से आ
रसना के तट से
टकराती हैं, वह
रसना तब भावाभिव्यंजना
करती है
पर !
लड़खड़ाती, कहती है !
कोई धूर्त
मूर्त है या अमूर्त
पता नहीं।

मेरा गला घोंट रहा है ,
'ज्ञात नहीं मुझे '
'वही तो पक्षपात है '
किसी एक को देखकर
आँखों में
करुणाई क्यों?
छलक आती है
और किसी को देख कर
आँखों में
अरुणाई क्यों ?
झलक आती है
किसका परिणाम है यह ?
इसी का नाम
'पक्षपात' है

पक्षपात !
यह एक ऐसा
गहरा गहरा
कोहरा है
जिसे
प्रभाकर की प्रखर - प्रखरतर
किरणें तक
चीर नहीं सकतीं
पथ पर चलता पथिक
सहचर साथी
उसका वह
फिर भला
कैसा दिख सकता है ?
सुन्दर सुन्दर सा
चेहरा गहरा... !

पक्षपात !
यह एक ऐसा
जल - प्रपात है
जहाँ पर,
सत्य की सजीव माटी
टिक नहीं सकती
बह जाती
पता नहीं कहाँ?
वह जाती
और असत्य के अनगढ़
विशाल पाषाण खण्ड
अधगढ़े टेढ़े - मेढ़े
अपनी धुन पर अड़े
शोभित होते ।

भयानक पाताल घाटी
नारकीय परिपाटी
जिसमें
इधर उधर टकराता
फिसलता फिसलता जाता
दर्शक का दृष्टिपात ।
एतावता
पक्षपात पक्षाघात है
अक्षघात है, ब्रह्मघात है
इसलिए
प्रभु से प्रार्थना है
स्वीकार हो प्रणिपात !
आगामी अनन्तकाल प्रवाह में
कभी न हो
पक्षपात से
मुलाकात ।

□□□

बोल, मुस्कान ।

धरती से फूट रहा है
नवजात है ,
और पौधा
धरती से पूछ रहा है
कि
यह आसमान को कब छुएगा।
छू सकेगा क्या नहीं ?
तूने पकड़ा है
गोद में ले रखा है इसे
छोड़ दे।
इसका विकास रुका है
ओ ! माँ।
माँ की मुस्कान बोलती है
भावना फलीभूत हो बेटा !
आस पूरी हो !
किन्तु
आसमान को छूना
आसान नहीं है
मेरे अन्दर उतर कर
जब छूयेगा
गहन गहराइयाँ
तब कहीं संभव हो
आसमान को छूना
आसान नहीं है ।

□□□